AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

रामचरितमानस में एवं वर्तमान समय में नारीयों की सामाजिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

ORIGINAL ARTICLE

Author
पुष्पा कुमारी सिंह
(पीएच. डी) शोधार्थी
समाजशास्त्र विभाग
कैपिटल विश्वविद्यालय
कोडरमा, झारखंड, भारत

शोध सार

भारतीय समाज में आधुनिक नारी की स्थिति तथा उससे जुड़े प्रश्नों की चर्चा करने के पूर्व इतिहास के पृष्ठों पर स्त्रियों का कैसा चित्र अंकित है, यह समझना आवश्यक है। सामाजिक जीवन कभी भी देश एवं काल के प्रभाव अछूता नहीं रह सकता। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा था। ऐसी मान्यताओं को यथार्थ की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है यदि यह स्वीकार कर लें कि प्राचीन युग में स्त्री की स्थिति बहुत अच्छी थी तथा उसका स्थान ऊँचा था तो उसकी उच्चता के प्रेरक तत्व कौन–कौन से थे तथा उसका ह्रास कब और कैसे हुआ, यह समझने के लिए इतिहास पर दृष्टिपात अनिवार्य है। आज वर्तमान संदर्भ में हम जिन आस्थाओं, मूल्यों एवं विश्वासों के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं जो मेरा प्राण है, जो मेरा जीवन है, जो सत्य है, जो प्रकाशमान है, उदीयमान है, उसे सन्मार्ग पर कैसे लाया जाए यह हमारे शोध का समस्या है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी लेखनी से राम कथा के माध्यम से भारतीय जन जीवन को एक नई दिशा ही नहीं प्रदान की बल्कि सुसुप्तावस्था में द्रूतगति से जा रही सभ्यता एवं संस्कृति को एक नया आयाम देने के साथ–साथ प्राण फूंककर का नया जीवन प्रदान किया है।

मुख्य शब्द

वैदिक समाज, उत्तर वैदिक काल, महाकाव्य युगीन.

भूमिका

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना जिन आदर्शों एवं मूल्यों की पुनर्स्थापना हेतु किया, वह अपने आप में विलक्षण प्रस्तुत होती है, तथा प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति को जीवंत बनाने का उनके द्वारा किया गया भागीरथ प्रयास है। प्रत्येक महत्वपूर्ण ग्रंथ के कुछ विचार एवं उद्देश्य होते हैं जो उस ग्रंथ एवं उसके रचयिता की मूल भावनाओं को समझने में सहायक होते हैं। तुलसीदास की रामचरितमानस के आध्यात्मिक उदेश्य राम का गुणगान है और सामाजिक उद्देश्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा अन्यान्य पात्रों के माध्यम से सामाजिक जीवन मूल्य उसकी संरचना राजनीति व्यवस्था तथा उसके अतीत का समुचित एवं उद्देश्य पूर्ण व्याख्या करना है। मानस उन लिखित ग्रंथों में से है जो न केवल युग को प्रभावित कर रहे हैं बल्कि जिनका प्रभाव सुदीर्घ भविष्य तक बना रहे वाला है।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की अनुपम निधि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित महाकाव्य रामचरितमानस कालीन सामाजिक व्यवस्था को पुनर्जीवित अवस्था में देखने का प्रयास है। मानस की वैसी अनेकों नारियां जो किसी न किसी रूप में अपना महत्व तथा समाज राष्ट्र के प्रति निष्ठा एवं समर्पण किस स्तर पर था विवेचन करने का प्रयास किया गया है। इस परिपेक्ष में उनके जीवन स्तर, खान–पान, रहन–सहन, परिवारिक और एवं सामाजिक जीवन में उनकी क्रियाकलाप तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण इस बिंदु पर था, इन सभी पहलुओं पर विस्तार पूर्वक समीक्षा करने का प्रयास किया गया है।

शोध के उद्देश्य

आज हम अपनी मानसिकता एवं मानव मूल्यों को जिस हाशिये पर ले जाकर खड़ा कर चुके हैं। अपनी आस्था में विश्वास एवं आदर्शों के प्रति जिस तरह से उदासीन होते जा रहे हैं, उसे पथ पर कैसे लाया जाए यह एक विकट प्रश्न है और इसी विकट प्रश्न का समाधान खोजना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है। हम लाख नियम बनालें लेकिन जब तक हम अपनी वास्तविकता को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक हर प्रयास पर बेमानी होगी। जैसा कि हम जानते हैं कि मानस सांस्कृतिक परंपरा की सफल सामाजिक श्रृंखला है, जो दर्शन एवं ज्ञान के सहारे प्राचीन भारतीय धरोहरों की रक्षा करता है, किंतु आज इन अनमोल धरोहरों पर ग्रहण लगता जा रहा है जिसके कारण हम नित्य नए–नए संकटों से घिरते जा रहे हैं। अतः इसे पुनर्स्थापित करना हमारे शोध का उद्देश्य है।

शोध के महत्व एवं प्रासंगिकता

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता वह वृक्ष की तरह है जो सदैव शांति एवं सहयोग का पैगाम देता है। कितने तूफानों एवं झंझावातों को झेलते हुए भी सदैव खड़ा रहता है। आज हमारी सभ्यता काफी दुर्गम राहों से गुजरते हुए 21वीं सदी में प्रवेश करने की तैयारी में है। किंतु सभ्यता जब पूर्ण रूप से परिपक्व होती है, तब सभ्यता कहलाती है तथा मानव जीवन के लिए अनमोल हो जाती है। भारतीय राजनीति की अपनी परंपरा रही है। हम राजतंत्र के राज से गुजरते हुए आज प्रजातंत्र का मुकुट धारण कर अपने सर पर रखे हुए हैं। पर हम तमाम परिवर्तनों के बावजूद कुछ ऐसी बातें हैं जो बदल नहीं सकती है क्योंकि उन्हें अपने आप में इस प्रकार आत्मसात कर लेते हैं जिन्हें किसी भी हालात में हम फेंक नहीं सकते। मानव जीवन छल–कपट, ईर्ष्या, द्वेष, आदि से भरा हुआ है। यह स्वाभाविक भी है पर जब कुछ नीतियों की आदर्शों की सभ्यता एवं संस्कृति की धार्मिक मान्यताओं एवं विश्वासों की सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्शों की रोशनी जब उस पर पड़ती है तो वह परिष्कृत हो जाती है तब नए सत्ता सूत्र की उत्पत्ति होती है। मानस के नारी पात्र उस नीति श्रद्धा एवं विश्वास की एक ऐसी नींव है जिन पर सारे तंत्र की व्यवस्था टिकी है। अतः हम इसके महत्व एवं महता से आंखें नहीं चुरा सकते। अगर हम ऐसा करते हैं तो फिर हम वह नहीं पा सकते जिसकी हम कामना करते हैं। आज इस वर्तमान काल में जिस प्रकार से इन महिलाओं का शोषण हो रहा है, वह भारत जैसे देश के लिए कलंक है। हम सचमुच में उस प्राचीन व्यवस्था एवं मर्यादाओं के अनुपालन में उदासीन हो गए हैं। अतः शोधार्थी का प्रयास है कि जिन नारियों के महत्व को दर्शाते हुए आज के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का विवेचन सम्यक ढंग से किया जाए जिससे आने वाली व्यवस्था एवं संस्कृति लाभ ले सके।

शोध प्रश्न

1. मानस में नारी पात्रों की परिवारिक एवं सामाजिक स्थिति कैसी थी?
2. राष्ट्रीय समाज के प्रति उनका सोच किस स्तर का था?
3. इन नारी पात्रों का जीवन मूल्य कैसा था?
4. आज वर्तमान में मानव मूल्यों के चरण में कौन कौन सा तत्व उत्तरदाई है?
5. मानस के नारी पात्रों की राजनीतिक दृष्टि की तुलना वर्तमान के संदर्भ से करें?

मानस विश्व जगत की एक अनुपम कृति है। सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा प्रश्न हो जो इससे अछूता रहा हो। शोध के क्रम में जो भी उपलब्ध हो पाया है या था साथ उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया

है। खासकर महिलाओं की सामाजिक दृष्टि एवं जीवन मूल्यों पर राज्य एवं समाज के प्रति उनकी भक्ति सोच भागीदारी

आंकड़ो का संकलन

मानस के नारी पात्रों में सामाजिक स्थिति की खोज विषय के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण स्रोत एवं आधार तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरितमानस दोहावली, कवितावली, रत्नावली, विनय पत्रिका, रामाज्ञा प्रश्नावली आदि तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तक जो मानस की आधार बनाकर लिखा गया है। इसके अतिरिक्त रामायण शोध प्रबंध एवं अन्य विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित अन्य पुस्तको से जानकारी ली गई है। इसके बाद भी रामायणी मानस के ज्ञाता मर्मज्ञ, प्रवचनकर्ता, संतों, ज्ञानियों आदि से संपर्क कर जानकारी लिया गया हैं। गोरखपुर एवं बनारस से प्रकाशित होने वाला पत्रिका कल्याण के उसके अंकों में वेद, पुराण, महाभारत, गीता, उपनिषद, शास्त्र आदि पर विशद वर्णन प्रस्तुत करते है जानकारी ली गई है, आदि से भी आंकड़ो का संग्रहण किया गया है।

शोध पद्धति

इस शोध पत्र मे भूत वर्तमान को टटोलने के साथ भविष्य की चिंता की गई। अतः ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों का सहारा लिया इसके साथ ही साथ आगमन पद्धति का सहारा लेते हुए यथार्थ की ओर उन्मुख होने का प्रयास किया गया है। मानस के नारी पात्रों की वास्तविक स्थिति का विवेचन करते हुए वर्तमान में तुलना किया गया है तथा यह बताने का प्रयास भी किया गया है कि हजारों वर्ष पूर्व की व्यवस्था आज के लिए कितनी उपयोगी और प्रासंगिक है। इसके अलावा शोध की पद्धति केवल ऐतिहासिक एवं आगमनात्मक नहीं है, बल्कि उसके साथ–साथ दार्शनिक एवं निगमन पद्धति का भी सहारा लिया गया है कि यह एक बेहतर समाज की खोज का कोई भी प्रयास हो, किसी भी व्यक्ति के द्वारा हो, दर्शन के बगैर वास्तविकता पर पहुंचना संभव नहीं है। जब तक हम उस व्यवस्था की गहराई में पहुंचकर सांगोपांग अध्ययन नहीं करेंगे तब तक सही निष्कर्ष तक पहुंचना संभव नहीं होगा।

वैदिक समाज में नारी

वैदिक समाज में नारी के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थाश्रम को आदर्श रूप प्राप्त होता था। वेद युगीन गृह का अस्तित्व नारी के अस्तित्व में ही निहित माना जाता था। वेद युगीन नारी समाज में पूज्य मानी जाती थी। वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है, जिसमें नारियों ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ ऋग्वैदिक युग में योग्य कन्या सुख का कारण मानी जाती थी। फिर भी वेद पुराणों में स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति की कामना करती हुई दृष्टिगत होती हैं।

वैदिक समाज में यद्यपि कन्या को भी पुत्रवत् स्नेह एवं आदर प्राप्त था पर तथापि कन्या जन्म के समय पुत्र जन्म के समान संस्कारों का सम्पादन नहीं किया जाता था। शत्रु नाश एवं आर्यों की स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से पुत्र – जन्म पर विशेष खुशी मनायी जाती थी। अथर्ववेद में कहा गया है कि, ''नववधू तू जिस घर में जा रही है वहां की साम्राज्ञी है, तेरे सास–ससुर देवर व अन्य व्यक्ति तुझे साम्रज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हों।'' अथर्ववेद में ही लिखा गया है, ''जायापत्ये मधुमती, वांच तदतु शान्तिवाम् अर्थात् बहु घर में आते ही गृहस्थी की बागडोर सम्भाल ले, आते ही घर की साम्राज्ञी बन जायें।''

इस युग में पति की पूर्णतः पत्नी अस्तित्व मे ही निहित मानी जाती थी। पत्नी रूप में नारी निश्चय ही पति की अर्द्धाग्नि होती थी। वेद युग में पत्नी को पति के मित्र का रूप प्राप्त था। वेदों में प्रयुक्त ष्दम्पत्तिष् शब्द इस तथ्य का परिचायक है कि पति एवं पत्नी दोनों मिलकर गृहस्थी को संचालन करते थे। पति एवं पत्नी के सम्बन्धों में इनती अधिक समता, घनिष्ठता एवं माधुर्य के होते हुए भी पितृ–प्रधान वैदिक समाज में पति की प्रभुता ही मानी जाती थी।

ए०एस० अल्तेकर के अनुसार – तयुगीन समाज में पत्नी के प्रति अधीनता आदर भाव से पूरित थी। इस

अधीनत्व के बावजूद पत्नियां तदयुगीन गृहों का आभूषण मानी जाती थी। ''पत्नी ही पूरे गृह का संचालन करती थी एवं दास आदि लोगों को उचित कार्यों में प्रवृत्त करती थी।'' वेद युगीन नारी मातृ–रूप में देवी के समान पूज्य मानी जाती थी। पत्नी को ष्जायाष् का अभिधान प्रदान कर हमारे आर्य मनीषियों ने निःसंदेह नारी को गौरवपूर्ण स्थान दिया था जिसके गर्भ में स्वामी स्वयं पुत्र रूप में जन्म गृहण करे, वही 'जाया' है।

के. एम. कपाड़ियों के अनुसार– वह घरेलू दिनचर्या की मुख्य केन्द्र थी, वह अपने घर की साम्राज्ञी थी उस पावन युग में स्त्री सम्बन्धी कुरीतियों का चलन प्रारम्भ नहीं हुआ था। प्राचीन भारतीय इतिहास में वेद– युग नारी के उत्थान का पराकाष्ठा काल माना जाता है।

उत्तर वैदिक काल में नारी

उत्तर वैदिक काल को सामान्यतः ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक माना जाता है। इस युग मे पुत्री की अपेक्षा पुत्रगमन अधिक मांगलिक एवं आनन्ददायक माना जाता था, फिर भी पूर्ण का स्थान सम्मानजनक था। आपस्तम्भ गृह सूत्र ज्ञात होता है कि, यात्रा से लौटने पर पिता पुत्र की भांति पुत्री को भी मन्त्रोच्चारण सहित आशीर्वाद देता था।

स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। स्त्रियों के उपनयन संस्कार का चलन पूर्णतः समाप्त हुआ प्रतीत नहीं होता है क्योंकि गृह सूत्रों में स्त्रियों के समावर्तन संस्कार का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि स्त्रियां वेदध्ययन करती थीं। विवाह संस्कार के समय पर वर एवं वधू सम्मिलित रूप से अनुवादक मन्त्रों का उच्चारण करते थे। अतः स्त्रियों की शिक्षा युवको से कम नहीं थी। पाणिनी ने भी ''उपाध्याय''् एवं ''आचार्या स्त्रियों पर प्रकाश डाला है।'' सूत्राध्ययन से स्पष्ट होता है कि विवाह के समय कन्याएं पूर्णतः व्यस्क एवं समागम के योग्य होती थीं।

जहाँ तक स्त्रियों के पुनर्विवाह का प्रश्न है कुछ शर्तो सहित सूत्र युगीन स्त्रियां भी इस सुविधा का उपभोग करती थी। इस युग में सती प्रथा का पूर्णाभाव था। विधवा स्त्री पति के शव के साथ श्मशान घाट तक जाती थी, परन्तु वहाँ से विधवा का देवर या वृद्धि व्यक्ति या पति का शिष्य उसे श्मशान घाट से घर ले आता था। घर में रहकर विधवा स्त्री संयमित एवं अनुशासित जीवन जीती थी। पति की अवीजता (संतानोत्पत्ति की अक्षमता), दुश्चरित्रता उन्माद एवं चारित्रिक पतन के कारण पत्नी पति से सम्बन्ध–विच्छेद कर सकती थी। इसके साथ ही पति यदि दीर्घकाल तक परदेश मे रह जाये उस दशा में भी पत्नी सम्बन्ध–विच्छेद कर सकती थी।

सूत्रकाल में स्त्री

सूत्र युगीन स्त्रियां पर्दे की कुप्रथा से त्रस्त नहीं थीं। नव–विवाहिता स्त्री भी पर्दा नहीं करती थी। इसका प्रमाण आपस्तम्ब गृह सूत्र में प्राप्त होता है कि विवाह के उपरान्त श्वसुर गृह जाते समय वधु का मुख सभी दर्शक देखते थे, साथ ही निम्नांकित वेद मंत्रों का उच्चारण भी करत थे':

'सुमंगलीयं वधुरियां समूत पश्चत्।
भक्तिमस्से दत्तवायाथास्तं विपरेतन।'

स्त्री का स्थान समाज में भार्या के रूप में तो प्रतिष्ठित एवं सम्मानीय था ही, परन्तु स्त्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान माता के रूप में पाती थी। पतनोन्मुख पिता को पुत्र बहिष्कृत कर सकता था, परन्तु पतिता माता पुत्र के आदर की पात्रा होती थीं।

अतः सूत्रकाल में स्त्री का स्थान आदरणीय था। धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में वह पूर्ण स्वतंत्रता का भोग करती थी। आर्थिक क्षेत्र में वह सीमित अधिकार ही प्राप्त किये हुए थी। सूत्रकारों ने यद्यपि सम्पत्ति पर दम्पत्ति का संयुक्ताधिकार स्वीकार किया हैं, तथापि धन व्यय करने के प्रश्न पर प्राथमिकता एवं प्रमुखता पति को ही दी थी पति की अनुपस्थिति में पत्नी अवश्य कुछ धन व्यय कर सकती थी'।

महाकाव्य युगीन समाज मे नारी

महाकाव्य युगीन समाज मे नारी का स्थान धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगा। सम्पूर्ण महाभारत में कन्या जन्म को अशुभ मानने का मात्र एक ही संकेत मिलता है। यद्यपि इस तयुगीन समाज मे कन्या को लक्ष्मी माना जाता था। कन्या की पवित्रता के कारण ही सिंहासनारोहण या राजतिलक जैसे शुभ कार्यों में कन्या की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। पुत्री की रक्षा करना पितृ धर्म माना जाता था।

धर्मशास्त्र काल

धर्मशास्त्र काल से हमारा आशय विशेषतः तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के समय से हैं। तीसरी शताब्दी के बाद याज्ञवल्क्य संहिता, विष्णु संहिता और पराशर संहिता की रचना हुई जिनमें वेदों के नियमों को पूर्णतया तिलांजलि देकर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का युग था, स्त्रियां भी इस संकीर्ण विचारधारा का शिकार बनीं।

इस काल मे स्त्रियां 'गृहलक्ष्मी' से 'याचिका' के रूप में दिखाई देने लगीं। 'माता' के रूप में सम्मानित होने वाली स्त्री का स्थान 'सेविका' ने लिया। जीवन और शक्ति प्रदायिनी देवी अब निर्बलताओं की प्रतीक बन गयी। 'स्त्री' जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा साहित्य और समाज के आदर्शो को प्रभावित करती थी, अब परतन्त्र पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी। इस युग में यह विश्वास दिया गया कि पति ही स्त्री के लिए देवता है और विवाह ही उसके जीवन का एकमात्र संस्कार हैं। अनेक पौराणिक गाथाओं और उपाख्यानों को ईश्वर द्वारा रचित बताकर सतियों की कथाओ का प्रतिपादन किया गया।

अतः धर्म का दृष्टि से वे शुद्रवत् हो गई। स्त्रियों के विवाह की उम्र 8–10 वर्ष मान ली गई। फलस्वरूप वे पति के चुनाव के विषय में अपनी राय देने में असमर्थ थी और उनकी शिक्षा नहीं हो पाती थी। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि उनके मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता था, वे अपने पति के कामों में सहयोग देने में असमर्थ होती। उन्हें पूर्ण रूप से अपने पति पर आश्रित रहना पड़ता था, पति ही उनके लिए देवता था। वे अपने कार्यों में कभी स्वतंत्र नहीं थीं, पति अथवा अभिभावक सदैव उनकी रक्षा के लिए तत्पर रहते थे।

मध्यकाल में नारी

स्थिति खराब होने पर भी मां का स्थान अच्छा हीं था। मत्स्यपुराण का कहना है कि माता का परित्याग किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है। मेधातिथि ने कहा है कि, 'माता यदि अपना कर्तव्य पालन नहीं करती है तो भी उसे घर से बहिष्कृत नहीं करना चाहिए, क्योंकि कोई मां अपने पुत्र के लिए जातिच्युत नहीं होती है'।

मंगोल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति जितनी तीव्र गति से पतन की ओर अग्रसर हुई वह हमारे सामाजिक इतिहास में कलंक के रूप में सदैव याद रहेगा।

11वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने की वजह से हमारी संस्कृति की रक्षा करना जरूरी हो गया था। इसलिए ब्राह्मणों ने संस्कृति की रक्षा स्त्रियों के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाएं रखने के लिए स्त्रियों के सम्बन्ध मे नियमों को अधिक कठोर बना दिया। लेकिन वे इस बात को भूल गए कि स्त्री जिसका समाज एवं संस्कृति में अपना एक विशेष महत्व है उसके चेतना शून्य हो जाने पर समाज एवं संस्कृति आदि अपने आप स्वतः ही समाप्त हो जाएंगे। इस युग में रक्त की पवित्रता की संकीर्णता का इतना विकास हुआ कि 5–6 वर्ष की आयु में ही विवाह होने लगे, जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की शिक्षा एवं उनके सामाजिक स्तर में तेजी से गिरावट आई।

पर्दा प्रथा का विकास तो इस सीमा तक हुआ कि परिवार के अन्य सदस्य तो दूर रहे पति स्वयं भी किसी अन्य व्यक्ति के सामने अपनी पत्नी का मुँह नहीं देख सकता था। पति की मृत्यु के बाद पत्नी का पति के साथ सती हो जाना पतिव्रत धर्म की सर्वोच्च परीक्षा मानी गई थी। इस प्रथा को धार्मिक आवरण प्रदान करके बढ़ावा दिया गया। पहली पत्नी के होते हुए भी विवाह कर लेना, एक से अधिक पत्नियां रखना, पुरुषों के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा बन

गया। इस प्रकार स्त्रियां अपने अस्तित्व पुरुषों के लिए पूर्णतः पर निर्भर हो गई। अज्ञानता के वशीभूत भारतीय समाज में इन्हीं कुरीतियों और मिथ्यावाद को भारतीय संस्कृति का अंग समझा गया।

आधुनिक युग में स्त्रियों की स्थिति

इस युग में स्त्रियों के सम्पत्ति के अधिकारों के सम्बन्ध में थोड़ा सा सुधार हुआ है जिन लड़कियों के भाई नहीं थे उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार मिलने लगा। शुक्र ने तो इस संदर्भ में यहां तक कह दिया कि जिस लड़की के भाई हैं उसे भाई से भी आधा हिस्सा मिलना चाहिए। 11वीं शताब्दी मे 'मिताक्षरा' के लेखक विज्ञानेश्वर ने उन सब सम्पत्तियों का स्त्री धन में समावेश किया जो उन्हें उत्तराधिकार एवं विभाजन आदि मे मिली।

ब्रिटिश काल से हमारा तात्पर्य 18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से स्वतन्त्रता पूर्व तक के समय से हैं। अंग्रेजी शासनकाल में भारतीयों द्वारा समाज सुधार के अनेक प्रयत्न किये गये, लेकिन सरकार की ओर से स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के कई व्यावहारिक प्रयत्न किये गये तथा नारी हितों को पूरा करने के लिए स्त्रियों का शोषण मुक्त होना अंग्रेजों के लिए भी लाभप्रद था।

परिणाम

इसका परिणाम यह हुआ कि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक स्त्रियों की निर्योग्यताओं के आधार पर इस काल में उनकी दयनीय स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने, स्वतन्त्र रूप से अपने अधिकारों की मांग करने और व्यवहार में नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था। स्त्रियों में अज्ञानता इस सीमा तक बढ़ गयी कि स्वतंत्रता के पहले स्त्रियों में साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम था, यह शिक्षा भी केवल काम चलाऊ ही थी, किसी भी स्त्री द्वारा बाल–विवाह अथवा पर्दा प्रथा का विरोध करना उसके चरित्र के लिए एक कलंक समझा जाता था। स्त्री के सम्बन्ध उसके माता पिता के परिवार तक सीमित थे। स्त्री के परम्परागत धार्मिक दायित्वों का निर्वाह करना ही उनके मनोरंजन का एक मात्र साधन था।

पारिवारिक क्षेत्र में स्त्रियों के समस्त अधिकार समाप्त हो गये। सैद्धान्तिक रूप से स्त्री परिवार के सभी कार्यो की संचालिका थी, लेकिन व्यवहार में यह सभी अधिकार परिवार के प्रमुखकर्ता को प्राप्त हो गये। स्त्री का विवाह बहुत छोटी आयु में हो जाने के कारण उसका जीवन आरम्भ में ही परम्परागत निषेधों और रूढ़ियों से युक्त हो गया। वैदिक काल की 'साम्राज्ञी' अब सास की सेविका बन गयी। परिवार में स्त्री का एकमात्र कार्य बच्चों को जन्म देना और पति के सभी सम्बन्धियों की सेवा करना रह गया। परिवार में दहेज की मात्रा, सदस्यों की सेवा और धार्मिक कार्यों को लेकर स्त्री का शोषण एक बहुत सामान्य सी बात हो गयी। सबसे बड़ी दुर्भाग्य तो यह था कि स्त्रियां स्वयं भी इस अत्याचार को अपने पूर्वजन्म के कर्म का फल मानकर इससे सन्तुष्ट रहती थीं। इससे उनकी स्थिति में निरन्तर हास होता गया।

निष्कर्ष

रामचरितमानस काल में स्त्रियों समस्त अधिकारों की भोक्ता थी, एवं उनकी स्थिति उच्च तथा आदरणीय थी। आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों की निर्योग्यताएं सबसे अधिक थी। उन्हें संयुक्त परिवार को सम्पत्ति में ही हिस्सा प्राप्त करने से वंचित रखा गया, बल्कि स्त्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था। स्त्री स्वयं 'सम्पत्ति' बन चुकी थी, फिर उसे सम्पत्ति के अधिकार किस तरह प्रदान किये जा सकते थे। स्त्रियों के द्वारा कोई आर्थिक क्रिया करना एक अनैतिक कार्य के रूप में देखा जाने लगा। हमारे समाज का इससे बड़ा दिवालियापन और क्या हो सकता है कि एक स्त्री भूख और प्यास से चाहे कितनी ही संतृप्त हो, लेकिन कोई आर्थिक क्रिया करना उसकी कुलीनता और स्त्रीत्व के विरूद्ध मान लिया गया। इन आर्थिक निर्योग्यताओं का ही परिणाम था कि स्त्री को बड़े अमानवीय व्यवहार के बावजूद पुरुषों की दया पर ही निर्भर रहना पड़ता था। आत्महत्या इस निर्भरता का एक मात्र समाधान रह गया। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन

हुए हैं। यद्यपि पिछली एक शताब्दी से ही स्त्रियों की स्थिति के सुधार बढ़ा व परिवर्तन हुआ है, लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्रियों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति मे जो परिवर्तन हुआ है सम्पूर्ण विश्व उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता था। श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवर्तनों प्रमुख कारण माना है।

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद, 14—14
2. श० ब्रा० 5.2.1—10
3. महाभारत, आदि पर्व, 74.40,
4. वृहत्त संहिता 74.5,5,11,15—16,
5. ऋग्वेद रू10 / 85 / 54.1 / 164 / 331 / 25 / 25
6. अथर्ववेदः 14 / 14
7. शतपथ ब्राह्मणः 5 / 21 / 20
8. ऐतरेय ब्राह्मणः 7 / 3 / 13
9. अल्तेकर ए.एस., Women in Hindi Civilization. p -93
10. मंत्रायणी संहिता : 4 / 7 / 4
11. प्रभु पी.एन., Hindu Social organcation, 258
12. आश्वलायन गृहसूत्र : 3 / 8 / 11
13. लखनपाल चन्द्राती, *स्त्रियों की स्थिति,* पृष्ठ 25
14. Desai Neera And Mrisnaraj M., *Women and Society in India,* p-27-28.
15. Srinivsa M.N., *Csat in Modem India.* p- 12.

——==00==——